भारतीय राज्य–समाज और राजनीतिक सम्बन्ध

डॉ0 गिरीश सिंह
(राजनीति विज्ञान)
सहायक अध्यापक
रा0उ0मा0वि0निलौटी

भारतीय समाज में सामान्यतया राजनीतिक सहभागिता को एक विशेष प्रकार का आक्रमक व्यवहार माना जाता है। राजनीतिक सामाजिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपना विकास कर समाज एवं देश का सफल नागरिक बनता है। **प्रो0 हाइमैन** ने भी लिखा है ''राजनीतिक सामाजीकरण राजनीतिक व्यवहार सिखलाने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य राजनीतिक नियमों एवं व्यवहारों को सीखता है। जिस समाज में जिस प्रकार का राजनीतिक सामाजीकरण होता है। उस समाज में रहने वाले व्यक्तियों का उसी प्रकार का आचार विचार एवं व्यवहार होता है।''

राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति के जीवन पर्यन्त चलती रहती है। यह प्रक्रिया सिखलाई नहीं जाती बल्कि स्वयं व्यक्ति इस प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति स्वयं को एक सफल नागरिक बनाने में सक्षम होता है। राजनीतिक समाज के भीतर जीवन बिताने के लिए व्यक्ति को इस समाज द्वारा अनुमोदित आचरणों को सीखना ही राजनीतिक सामाजीकरण है। इस प्रक्रिया से व्यक्ति को राजनीतिक जीवन के ढांचे में ढाला जाता है जो निरन्तर क्रियाशील रहती है। प्रमुख राजनीतिक **आलमण्ड** ने भी कहा है कि ''हम राजनीतिक समाज के वास्तविक रूप एवं उसके ढांचे के विषय में पूर्ण जानकारी राजनीतिक समाजीकरण के अध्ययन के द्वारा प्राप्त करते हैं। यह हमें इसके कार्य, प्रभाव का तरीका तथा उसकी स्थिति का पूर्ण ज्ञान प्रदान करता है।''

राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा किसी समाज या संस्था का अपरिपक्व सदस्य उस समाज के व्यवहार, मूल्य एवं सिद्धान्तों को सीखता है। इस प्रक्रिया के द्वारा वह राजनीतिक व्यवहार, आचार, विचार तथा राजनीतिक व्यवस्था को स्वीकार करता है। यह प्रक्रिया राजनीतिक समाज में बड़े ही निर्वाध गति से अपना कार्य करती है। राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया राजनीति को समझने वाली उस कुंजी की भांति है जिसके द्वारा व्यक्ति उन राजनीतिक तरीकों का ज्ञान प्राप्त करता है, जो उस समाज में प्रचलित रहती है, जिसमें वह रहता है। राजनीतिक सीख, राजनीतिक व्यवहार को धीरे–धीरे प्रभावित करती है यह प्रक्रिया राजनीतिक कार्य के द्वारा बढ़ती ही जाती है।

राजनीति, संगठित समाज से ही होती है और समाज को राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता हैं। भारत में राजनीति और समाज का महत्वपूर्ण सम्बन्ध रहा है। सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने और 1950 के संविधान के अंतर्गत संसदीय लोकतंत्र की स्थापना से लेकर सन् 2021 तक की भारतीय राजनीति को समाज और उसके तत्व प्रभावित करते रहे हैं। भारत का समाज धर्म, जाति, भाषा और प्रादेशिकता के तत्वों से प्रभावित रहा है और राजनीति व्यवस्था पर इन तत्वों का दबाव प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों रूपों में दृष्टिगोचर रहा है।

वर्ष 1960 के दशक से भारतीय राजनीति में नए सामाजिक समूहों का प्रवेश हुआ और उन्होंने अपने राजनीतिक संसाधनों के उपयोग से राजनीति को आकार देना प्रारम्भ किया। स्त्रियों एवं पर्यावरणाविदों ने नए राजनीतिक वर्ग का निर्माण किया, जिसने परम्परागत भेदों का विस्तार किया। सामाजिक आन्दोलनों एवं गैर सरकारी संगठनों के विस्तार ने यह दिखाया है कि भारतीय राजनीतिक दलों तथा राज्य की संस्थाओं की मुश्किलों के बावजूद भारतीय जनतांत्रिका प्रवृत्ति फल–फूल रही है।[1]

वर्ष 1970 के दशक में सामाजिक कार्यकर्ताओं ने वृहत आधार पर सामाजिक आन्दोलन खड़ा करना आरम्भ किया। यह उनके लिए शक्तिशाली साबित हुए जिनकी उनके दृष्टिकोण से राज्य तथा राजनीतिक दलों द्वारा उपेक्षा की जा रही थी। संभवतः सबसे ताकतवर था–कृषि आन्दोलन, दलित पैंथर के नेतृत्व में अनूसूचित जातियों ने पहले अछूत समझे जाने वाली जातियों की पहचान को लेकर पुनः मुखर होना शुरू कर दिया। विभिन्न संगठनों की स्त्रियों ने परिचर्चाओं में अपने विचारों का आदान–प्रदान आरम्भ कर दिया। स्त्रियों से जुड़े मुद्दों को परिभाषित एवं प्रोत्साहित करना शुरू कर दिया। इसी तरह पर्यावरण के मुद्दों से जुड़े आन्दोलन प्रारम्भ हुए और जिसने सरकार पर पर्यावरण से जुडे मुद्दों के प्रति और अधिक जवाबदेह होने के लिए और अधिक दबाव बनाना शुरू कर दिया। उसने यह प्रयास भी किया कि विकास का एक ऐसा सिद्धान्त बने जिसमें जनजातीय संस्कृति तथा पर्यावरण की उत्तरजीविता को लेकर और अधिक समानता हो।[2]

अत्यधिक प्रतिस्पर्धात्मक चुनाव, अपेक्षाकृत स्वतंत्र न्यायपालिका, मीडिया एवं जागृत नागरिक समाज के साथ भारत में एक ऐसी परिस्थिति बनी हुई है, जो समस्त विकासशील देशों में सबसे अधिक जनतांत्रिक है। फिर भी भारतीय जनतंत्र दबाव के बगैर नहीं है। भारत में राजनीतिक सत्ता धीरे–धीरे और अधिक केन्द्रीकृत होती जा रही है, ऐसे समय में जब भारत का नागरिक समाज इस तरह से संगठित हो रहा है, जो भारत की असाधारण सामाजिक विविधता को दर्शाता है। भारत के राजनीतिक दल संकट के दौर से गुजर रहे हैं। कांग्रेस (आई) पतन की ओर अग्रसर है, जिसे इसके परम्परागत समर्थन के क्षय और कांग्रेस सरकार के लगातार घोटालों में घिरते जाने के रूप में देखा जा सकता है। पार्टी एक ऐसे नेतृत्व को विकसित करने में असफल रही है जो इसे पुनर्जीवन देता तथा नेहरू विजन समाजवाद के स्थान पर एक नया कार्यक्रम और संदेश देता। मई सन् 1995 में कांग्रेस पार्टी में टूट ने उसे अनुप्राणित करने के प्रयासों के लिए नया संकट खड़ा कर दिया।[3]

राष्ट्रीय राज्य की केन्द्रीकरण और राष्ट्रीयकरण करने और बहुलवादी समाज के विभेदों को एक जन समाज के समरूप खांचे में ढालने की भूमिका रही है। एक तरह से राष्ट्रीय राज्य ने भू–भागीयता को केन्द्र–राज्य की वैधता का बुनियादी स्रोत बनाया। उसने अपनी अन्दरूनी और बाहरी सीमाओं को परिभाषित किया। दूसरा राज्य का केन्द्र परिधि की तरफ फैलने लगा और सामाजिक और आर्थिक कार्यों को चलाने और विभिन्न मतभेदों को संभालने की कोशिश में एक तरह के जन–समाज का उदय हुआ। राज्य के कार्यों का निरन्तर फैलाव होने से इसके प्रबंधकीय और प्रशासकीय कार्य–भारो का ही नहीं बल्कि व्यवसायिक और लोकहितकारी रूझानों के विस्तार का रास्ता भी खुला। राष्ट्रीय राज्य इन बुनियादी प्रवृत्तियों का सुदृढ़ीकरण करते हुए उन्हें मजबूती प्रदान करता है। इस जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए राज्य को अपनी एकजुटता और अपने घटकों का अनुशासित करने की गारंटी करनी पड़ी ताकि वह राष्ट्र समुदाय में अपने राष्ट्र का अकेला वैधानिक प्रवक्ता बन सके। राज्य को अपनी सीमाओं की अखण्डता, अपनी अर्थ–व्यवस्था और अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा का एक ढांचा भी बनाना पड़ा। अपनी सुरक्षा पर आये संकट के अनुपात में उसने बल और सैनिक शक्ति का सहारा लिया। इससे राज्य तंत्र के और कठोर होते जाने का अंदेशा पैदा हुआ। राज्य और नागरिक समाज के बीच रिश्तों का खुलापन घटते चले जाने का खतरा उत्पन्न हो गया।[4]

आज भारतीय समाज में राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित है। जहाँ राजनीतिक और प्रशासनिक शक्ति को समाज ने अमलीयजामा पहनाया है, वहीं इन संस्थाओं के साथ–साथ केन्द्र–राज्य ने भी समाज की शक्ति स्वीकारी है। गठबन्धन से मूल्यों की राजनीति के स्थान पर सत्तालोलुपता की राजनीति का सूत्रपात हुआ है। समाज के विखण्डित ढांचे में राजनतिक संस्थाओं, मूल्यों और विचारों का समावेश हुआ है। समाज के विभिन्न वर्गो को राजनीति में स्थान मिला है और उसका लाभ भी मिला है।[5] भारत एक विशाल देश है यहां की राज्यों की राजनीति में एकरूपता का अभाव पाया जाता है। इस एकरूपता के अभाव का कारण यहां की विभिन्न प्रकार की क्षेत्रीय समस्याएं आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में विभिन्नता है। इन सबके साथ ही नेतृत्व, शिक्षा का स्तर, संसाधनों की उपलब्धता, जनता की जागरूकता, भाषावाद, साम्प्रदायिकतावाद तथा यथा स्थितिवाद जैसे परम्परागत तत्वों ने राज्यों की राजनीति को प्रभावित किया है। ये सभी कारण भारत की संरचनात्मक एकरूपता को भी प्रभावित करती है। इन्हीं कारणों से 1947 से लेकर वर्तमान तक भारतीय राज्यों की राजनीतिक गति का स्पष्ट एवं निश्चित दिशा बताना कठिन हुआ है।[6] भारतीय संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत राजनीति के तीन स्तर दृष्टिगोचर होते हैं।

1) राष्ट्रीय राजनीति।

2) राज्य राजनीति।

3) स्थानीय राजनीति।

इस त्रिस्तरीय राजनीति में राष्ट्रीय राजनीति, आधुनिकतावादी और स्थानीय राजनीति, परम्परावादी और राज्य राजनीति आधुनिकतावादी और परम्परावादी दोनों तत्वों का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार भारत की राजनीति में राज्यों की राजनीति ऐसी महत्वपूर्ण कड़ी है जो गांव, कस्बा, नगर और शहर की राजनीति को राष्ट्रीय राजनीति से जोड़ने का कार्य करती है।

भारतीय संघ के विभिन्न इकाईयों की राजनीति को राज्य राजनीति के रूप में परिभाषित किया गया है। भारत के राज्यों का अध्ययन विशाल राजनीतिक व्यवस्था के अंग के रूप में या स्वतन्त्र रूप से दोनों तरह से किया जा सकता है। जहां तक राज्यों के शासन के सम्बन्ध में संवैधानिक प्रावधानों का सवाल है तो भारतीय संघ के राज्यों के अपने अलग संविधान नहीं है। कुछ विशेष मामलों में विशेष प्रावधानों को छोड़कर संविधान के द्वारा सभी राज्यों को एक जैसी शक्ति प्रदान की गयी है लेकिन यह सच्चाई है कि राज्यों की सामाजिक स्थिति और संगठनिक संरचना भिन्न है। इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि सभी राज्यों की राजनीतिक प्रवृत्तियां एक जैसी हों। भारतीय राज्यों की संवैधानिकता एक ही तरह का होने के बावजूद उनकी पहचान अलग–अलग है। भारतीय संघीय व्यवस्था में राज्यों की भूमिका महत्वपूर्ण है। इसलिए राज्य राजनीति का अपना विशेष महत्व है। कुछ विद्वानों का मानना है कि लोक कल्याण के सम्बन्ध में राज्यों की सरकारें ही वास्तविक सरकारें होती है। विकास कार्यक्रमों के सन्दर्भ में केन्द्र सरकार की भूमिका प्राथमिक तौर पर होती है। विकास कार्यक्रमों को लागू करने की जिम्मेदारी मुख्यतः राज्य सरकारों की होती है। जनसाधारण की दिन–प्रतिदिन की समस्याओं का समाधान भी राज्य सरकारों द्वारा ही किया जा सकता है। इसी कारण संसद और केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल की अपेक्षा विधानसभा और राज्य मन्त्रिमण्डल में ही जनसाधारण की अधिक रूचि रहती है। वस्तुतः राज्य राष्ट्रीय राजनीति की आधारशिलाएँ हैं।[7]

राज्य राजनीति की प्रभावशीलता का उदय **पं0 नेहरू** की मृत्यु के बाद हुआ। राज्य राजनीति के आधारिक विद्वान **डॉ0 इकबाल नारायण** का मत है कि ''पं0 नेहरू के जीवनकाल में ही भारत ने राज्य आधारित क्षेत्रीय राजनीति में प्रवेश कर लिया था उनके निधन ने इस प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान कर दी। चीन के हाथों पराजय, बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति और स्वयं अपने गिरते हुए स्वास्थ्य ने पं0 नेहरू की स्थिति को जिस अनुपात में आघात पहुंचाया था, प्रादेशिक क्षेत्र और राज्यों की राजनीति उसी अनुपात में शक्तिशाली होते गये। **पं0 नेहरू** ने सन् 1963 में **'कामराज योजना'** के माध्यम से केन्द्र और राज्य राजनीति पर पुनः पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करना चाहा था, लेकिन इसमें उन्हें आंशिक सफलता ही मिली। उत्तर प्रदेश में सत्ता परिवर्तन हुआ। **जे.डी. सेठी** लिखते हैं कि ''नेहरू के अन्तिम दिनों में राजसत्ता केन्द्र से राज्यों की ओर उन्मुख हो गयी थी।''[8]

भारत में केन्द्रीकरण के बावजूद विकास कार्यों से सम्बन्धित शक्तियाँ राज्यों को ही प्रदान की गयी है। इसलिए यह महसूस किया गया कि आर्थिक विकास के सम्बन्ध में राज्यों की भूमिका महत्वपूर्ण है। केन्द्र की भूमिका इसके बाद हैं। इसके अलावा क्षेत्रवाद की भावना में वृद्धि हुई। विभिन्न राज्यों में उप–क्षेत्रीयवाद, अलगाववाद और साम्प्रदायिक तनाव पैदा हुए जिसके कारण उन राज्यों की राजनीति का अध्ययन करना विद्वानों के लिए चुनौतीपूर्ण विषय बन गया। इन कारणों से राज्यों की राजनीति को गम्भीरता से लिया जाने लगा। **माइनर वीनर** की भी यह आशापूर्ण हुई। सन् 1970 के बाद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में राज्यों की राजनीति महत्वपूर्ण विषय बन गई। अब जोर–शोर से यह महसूस किया जाने लगा है कि राज्यों की राजनीतिक प्रक्रिया एक ही धारा में नहीं चलती है। इस प्रकार राज्य सरकारों और राजनीतिक प्रक्रिया का व्यवस्थित अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है ताकि राज्य सरकारों के सांगठनिक स्वरूप की जानकारी प्राप्त हो सके। राज्यों की राजनीतिक प्रक्रिया के सन्दर्भ में **हरिद्वार राय** और **जवाहर लाल पाण्डेय** ने निम्न महत्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा की है।[9]

1) संघीय शासन प्रणाली में प्रत्येक राज्य को कम या अधिक स्वायत्तता का अधिकार होता है। राज्य सरकारों को कृषि, ग्रामीण कराधान, शिक्षा आदि के बारे में महत्वपूर्ण शक्तियाँ तो प्राप्त है ही इसके अलावा भी राज्य सरकारें इतनी सक्षम होती है कि विभिन्न मुद्दों पर रियायत और सुविधाएं पाने के लिए केन्द्र सरकार को प्रभावित कर सकती है।

2) राज्य सरकारें परम्परावादी तत्वों का भी प्रतिनिधित्व करती है। जनसाधारण की दिन–प्रतिदिन की समस्याओं का समाधान राज्य सरकार द्वारा ही किया जाता है। इसलिए राज्य सरकारें शक्ति की महत्वपूर्ण स्रोत होती है।

3) राष्ट्रीय विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में राज्य सरकारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राष्ट्रीय योजनाओं की सफलता राज्य सरकारों के कार्यों पर निर्भर करती है क्योंकि राज्य सरकारें देश की प्रशासनिक यन्त्रों के बड़े हिस्से पर अपना नियन्त्रण करती है।

4) राज्य स्तर पर राजनीतिक गतिविधियाँ अन्ततः समूची राजनीतिक व्यवस्था की राजनीतिक प्रक्रिया को आकार देती है। राजनीतिक शक्तियों के राजनीतिक ध्रुवीकरण की शुरूआत राज्यों से होकर राष्ट्रीय स्तर पर पहुंचती है।

5) भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का गहराई से परीक्षण करने से यह स्पष्ट होता है कि ''प्रत्येक राज्य के राजनीतिक विकास का अपना स्वरूप और अपना आन्तरिक राजनीतिक संकट होता है।'' संघ राज्य की एक इकाई और दूसरी इकाई में भेद की स्थिति होना स्वाभाविक है। यह भेद उनकी राजनीतिक और अन्तः प्रक्रिया की प्रवृत्तियों में होता है।

राज्यों की राजनीति को प्रभावित करने वाले कारक– भारत के विभिन्न राज्यों की ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति भिन्न–भिन्न है। राज्यों की राजनीति को प्रभावित करने वाले कारको का वर्णन निम्न प्रकार कर सकते हैं–

1) **संवैधानिक तत्व–** भारतीय संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र को राज्यों की अपेक्षा अधिक शक्तियां प्राप्त है। शक्तिशाली केन्द्र संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा राज्यों पर अपना नियन्त्रण बनाये रखता है।

2) **राजनीतिक तत्व–** राजनीतिक तत्व के अन्तर्गत अनेक बातें आती हैं–

i) केन्द्रीय नेतृत्व, मुख्यतया प्रधानमंत्री का व्यक्तित्व राज्यों की राजनीतिक प्रक्रिया को बहुत अधिक सीमा तक प्रभावित करता है। यदि केन्द्रीय नेतृत्व शक्तिशाली और प्रधानमंत्री का व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है तो राज्यों की राजनीतिक प्रक्रिया शिथिल रहती है।

ii) मुख्यमंत्री का व्यक्तित्व भी राज्यों की राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पश्चिम बंगाल में **डॉ0बी0सी0 राय** और उत्तर प्रदेश में **पं0 गोविन्द बल्लभ पंत** का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि वे केन्द्र सरकार के अनुचित हस्तक्षेप के खिलाफ खड़े हो जाते थे।

iii) केन्द्र एवं राज्यों की दलीय स्थिति ने राज्य–राजनीति को कई प्रकार से प्रभावित किया है। केन्द्र–राज्य एक ही दल की सरकारों में मधुर सम्बन्ध देखे गये हैं, विपरीत दलों की सरकारों में कटु सम्बन्ध रहते हैं। केन्द्र में अल्पमत या गठबन्धन सरकार हो तो ऐसी स्थिति में केन्द्र द्वारा राज्यों को निर्देशन की क्षमता कम हो जाती है। प्रधानमंत्री व मुख्यमंत्री के व्यक्तिगत आपसी सम्बन्ध भी देखे गए हैं।

3) **जाति और धर्म–** अखिल भारतीय राजनीति की अपेक्षा राज्य स्तर की राजनीतिक प्रक्रिया को जाति और धर्म अधिक प्रभावित करती है। बिहार, केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा और राजस्थान में जाति और धर्म ने विशेष रूप से राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित किया है।

4) **आर्थिक तत्व–** राज्यों की राजनीतिक प्रक्रिया आर्थिक तत्वों से भी प्रभावित होती है। यदि एक राज्य में प्राकृतिक संसाधनों की बहुलता है, उसका पर्याप्त औद्योगीकरण हो गया है या कृषि सम्पदा के कारण उसके पास पर्याप्त वित्तीय साधन है, तो उस राज्य की राजनीतिक प्रक्रिया स्वतन्त्र एवं स्वस्थ्य रूप से विकसित होने की आशा की जा सकती है।[10]

5) **सांस्कृतिक–सामाजिक तत्व–** भारत संघ के कुछ राज्य सांस्कृतिक, सामाजिक दृष्टि से विकसित, लेकिन कुछ अन्य बहुत पिछड़े हुये हैं। पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, केरल और तमिलनाडु प्रथम श्रेणी में लेकिन बिहार, उड़ीसा, राजस्थान आदि द्वितीय श्रेणी में आते हैं। भाषा, संस्कृति आदि की दृष्टि से जिन राज्यों की स्थिति भारत की राष्ट्रीय स्थिति के कुछ भिन्न है, उनके साथ व्यवहार करते समय केन्द्र को विशेष सावधानी बरतनी होती है।

6) **भौगोलिक तत्व–** किसी राज्य की भौगोलिक स्थिति उस राज्य के आर्थिक विकास को और परोक्ष रूप में राज्य राजनीति को प्रभावित करती है। सीमान्त पर स्थित राज्यों में यदि कभी पृथकवादी प्रवृतियों का उदय होता है तो इसका प्रमुख कारण उसकी भौगोलिक स्थिति हो सकती है। नागालैण्ड और मिजोरम आदि राज्यों की प्रवृत्ति को इसी सन्दर्भ में समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त भारतीय संघ के कुछ राज्य क्षेत्र तथा जनसंख्या की दृष्टि से बहुत विशाल तथा विविधताओं से परिपूर्ण है, लेकिन दूसरी ओर कुछ राज्य क्षेत्र तथा जनसंख्या की दृष्टि से छोटे और अपेक्षाकृत कम विविधताओं वाले हैं। ऐसे राज्यों की राजनीति में एक–दूसरे से भेद होना नितान्त आवश्यक है।[11]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में राज्यों की राजनीति में अन्तर साफ दृष्टिगोचर होता है। जिस कारण भारत में राज्यों की राजनीति का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है।

संदर्भ सूची

1 सिन्हा, मनोज : समकालीन भारत एक परिचय, ब्लैकस्वान ओरियंट, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ–260
2 वही, पृष्ठ–261
3 वही
4 दुबे, अभय कुमार : लोकतंत्र के सात अध्याय, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृष्ठ–143, 144
5 नेगी, डॉ0एम0एम0 : केन्द्र में गठबन्धन सरकारों की राजनीति : 2009–2014 यूपीए के विशेष संदर्भ में, IRJMSH-Vol-7,2016, पृष्ठ– 119
6 कुमार, डॉ0 आशोक : राजनीति विज्ञान, उपकार प्रकाशन, आगरा, 2000, पृष्ठ–350
7 वीर, गौतम : भारत में राज्यों की राजनीति, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ–01, 02
8 वही, पृष्ठ–4
9 वही, पृष्ठ– 7
10 वही, पृष्ठ– 9, 11
11 वही, पृष्ठ–59, 60